

धार्मिक चेतना

डॉ० स्मिता कुमारी ¹

प्राप्ति: 19 सितम्बर 2026 / संशोधित: 24 सितम्बर 2026 / स्वीकृत: 26 सितम्बर 2026 / प्रकाशित ऑनलाइन: 28 सितम्बर 2026
Copyright © 2026 Author(s). Published by Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).

सारांश

धार्मिक चेतना धार्मिक भावना तथा अनुभूति की चेतना है। धार्मिक चेतना धर्म का प्राणतत्त्व है, जिसमें मानव व्यक्तित्व के ज्ञानात्मक, भावनात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों का समावेश होता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में धार्मिक चेतना के स्वरूप, उसके प्रमुख तत्वों तथा उसके दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक आधारों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में धार्मिक चेतना से संबंधित तीन प्रमुख दृष्टिकोणों— ज्ञान प्रधान, भावना प्रधान तथा संकल्प अथवा क्रिया प्रधान का आलोचनात्मक विवेचन किया गया है। ज्ञान प्रधान दृष्टिकोण धर्म में विवेक एवं बौद्धिक बोध को महत्त्व देता है, जबकि भावना प्रधान दृष्टिकोण श्रद्धा, आस्था, प्रेम, आत्मसमर्पण एवं धार्मिक अनुभूति को केंद्रीय मानता है। इसके विपरीत संकल्प प्रधान दृष्टिकोण धार्मिक आचरण, कर्म, पूजा एवं व्यवहार को धार्मिक चेतना का आधार मानता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इनमें से किसी एक तत्व को धार्मिक चेतना का पूर्ण आधार मानना एकांगी दृष्टिकोण है। वास्तविक धार्मिक चेतना ज्ञान, भावना और क्रिया के समन्वित स्वरूप में अभिव्यक्त होती है। शोध-पत्र में रुडोल्फ आर्टो की 'नुमिनस' अवधारणा के माध्यम से धार्मिक चेतना के रहस्यात्मक एवं आध्यात्मिक पक्ष का भी विवेचन किया गया है। निष्कर्षतः धार्मिक चेतना एक समग्र मानवीय अनुभूति है, जो आध्यात्मिक बोध, आस्था, नैतिक आचरण तथा आंतरिक शांति और अभय की अनुभूति से संबद्ध है। धार्मिक चेतना धार्मिक भावना तथा अनुभूति की चेतना है। यह धर्म का प्राण है। इसका मुख्य केन्द्र व्यक्ति है। व्यक्ति ही सदैव धर्म विषय चेतना को प्राप्त करता है। यहां तक की अविकसित धर्म में भी व्यक्ति ही धर्म का आधार होता है। इसलिए धार्मिक चेतना में मानव व्यक्तित्व में निहित सभी तत्व ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं संकल्पात्मक निहित हैं। इसमें श्रद्धा, आस्था, भाव, संवेग, इच्छा, क्रिया आदि तत्व विद्यमान रहते हैं।

मुख्य शब्द: धार्मिक चेतना, ज्ञानात्मक, भावनात्मक, संकल्पात्मक, क्रियात्मक, धार्मिक अनुभूति।

प्रस्तावना

धार्मिक चेतना धार्मिक भावना तथा अनुभूति की चेतना है। यह धर्म का प्राण है। इसका मुख्य केन्द्र व्यक्ति है। व्यक्ति ही सदैव धर्म विषय चेतना को प्राप्त करता है। यहां तक की अविकसित धर्म में भी व्यक्ति ही धर्म का आधार होता है। इसलिए धार्मिक चेतना में मानव व्यक्तित्व में निहित सभी तत्व ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं संकल्पात्मक निहित हैं। इसमें श्रद्धा, आस्था, भाव, संवेग, इच्छा, क्रिया आदि तत्व विद्यमान रहते हैं। यह ईश्वर अथवा आध्यात्मिक लक्ष्य के ज्ञान तथा इस ज्ञान से संबंधित अन्य श्रद्धामूलक अनुभूतियों, भक्ति एवं अन्य भावनाओं तथा इन भावनाओं की उपयुक्त ऐच्छिक एवं व्यवहारिक अभिव्यक्तियों, जैसे अनेक रूपों में दिखाई पड़ती है।¹

1 सीनियर असिस्टेंट प्रोफेसर, अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, एम. एम. महिला कॉलेज, आरा, वी. के. एस. यू., आरा, बिहार

✉ डॉ० स्मिता कुमारी, E-mail: smitakumari82@gmail.com

साधारणतः चेतना शब्द का अर्थ ज्ञान होता है। व्यावहारिक जीवन में लोग चेतना का अर्थ विचार, ज्ञान इत्यादि लेते हैं। परन्तु यह चेतना का संकीर्ण प्रयोग है। आधुनिक मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि मन के तीन पहलू हैं— विचार, भावना और इच्छा। इसलिए मन को एक मात्र चेतन कहना मान्य प्रतीत नहीं होता।² जे. एच. ल्यूबा ने मन के इस स्वरूप की ओर संकेत किया है। इन्होंने कहा है कि “चेतन जीवन की इकाई न विचार है, न भाव, न इच्छा अपितु किसी वस्तु के प्रति तीनों की संश्लिष्ट गति है।”³ अतः धार्मिक चेतना में चेतना शब्द का वृहत् अर्थ में प्रयोग किया गया है। इस चेतना के तीन पहलू माने गये हैं—

1. ज्ञानात्मक पहलू
2. भावनात्मक पहलू
3. क्रियात्मक पहलू

1. ज्ञानात्मक तत्व— ज्ञानात्मक पहलू धर्म का वह पक्ष है जो मनुष्य को किसी शक्ति या सत्ता के प्रति चेतनाशील बनाता है। इस पहलू की प्रधानता किसी गणित की समस्या को हल करने में होती है।

2. भावनात्मक पहलू— धर्म का भावनात्मक पहलू मनुष्य में उस शक्ति या सत्ता के प्रति, आत्मसमर्पण, श्रद्धा, आस्था और निर्भरता का भाव उत्पन्न करता है। इस पहलू की प्रधानता तीव्र एवं शक्तिशाली संवेग में होती है।

3. क्रियात्मक पहलू— धर्म का क्रियात्मक तत्व मनुष्य को सक्रिय, सचेष्ट और प्रयत्नशील बनाता है। इससे मनुष्य अपने सत्कर्मों के द्वारा उस सत्ता को प्रसन्न करके उसकी कृपा प्राप्त करता है। कर्मकांड और पूजा-पद्धति धर्म के इसी तत्व के परिणामस्वरूप विकसित हुए।

उपरोक्त तीनों तत्वों में से किसी एक के अभाव में धार्मिक चेतना एकांगी, अपूर्ण और अशक्त है, क्योंकि धर्म सम्पूर्ण मन की प्रतिक्रिया है। इसलिए ज्ञान, भाव एवं संकल्प तीनों संयुक्त रूप से ही किसी अनुभव को जन्म एवं अर्थ प्रदान करते हैं। ये एक-दूसरे से पूर्णतया पृथक् नहीं किये जा सकते। इनके पृथक्त्व में कोई अनुभूति पूर्ण नहीं हो सकती। तथापि यहां यह प्रश्न विचारणीय है कि इन तीनों में से कौन-सा तत्व धार्मिक चेतना के निर्माण में अधिक महत्वपूर्ण है।

विभिन्न तत्वों का वर्गीकरण

मानव व्यक्तित्व में अंतर्निहित विभिन्न तत्वों का वर्गीकरण विशेषतः यूनानी विचारकों में पाया जाता है। ज्ञान, भाव एवं संकल्प के रूप में वर्गीकरण सर्वप्रथम टेन्ट्स ने 1736-1807 में प्रस्तुत किया। यह वर्गीकरण कान्ट के द्वारा प्रचलित होकर आज भी समान रूप से स्वीकार किया जाता है। कई मनोवैज्ञानिक भाव और संकल्प में निकटता मानते हुए मानव व्यक्तित्व को सिर्फ दो भागों भावात्मक तथा क्रियात्मक पहलू में विभाजित करते हैं। कुछ बुद्धिवादी विचारकों के अनुसार धार्मिक चेतना मूलतया विश्वास अथवा ज्ञान प्रधान होती है। 18 वीं सदी के बुद्धिवादी चिंतक मनुष्य को एक शुद्ध बौद्धिक प्राणी मानते हैं। मानव को आदर्श व्यक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। हेगल, मैक्समूलर आदि विद्वान भी धर्म में ज्ञान पक्ष को विशेष महत्व देते हैं। अर्वाचीन काल में बुद्धिवाद की अपेक्षा संकल्पवाद की ओर लोगों का अधिक ध्यान गया। कान्ट में शुद्ध सैद्धांतिक की अपेक्षा व्यवहारिक तर्क की प्राथमिकता है। विलियम जेम्स ने भाव को धर्म का सबसे गहरा श्रोत माना है। इसलिए मुख्य प्रश्न यह है कि धार्मिक चेतना के विभिन्न तत्व के संबंध प्रमुख विचारकों का मत क्या है? वस्तुतः धार्मिक चेतना ज्ञान प्रधान या भाव प्रधान या संकल्प प्रधान है। इसका वर्णन इस प्रकार निम्न है—

धार्मिक चेतना ज्ञान प्रधान है:

पाश्चात्य विचारकों में हेगल, प्रो. मैक्समूलर और महान भारतीय दार्शनिक आचार्य शंकर एवं सांख्य दर्शन ने ज्ञान को ही धर्म का प्रमुख आधार माना है। अनेक बुद्धिवादी दार्शनिकों ने भी इस मत का समर्थन किया है। इस मत के समर्थकों द्वारा दी गई युक्तियां इस प्रकार हैं—

1. हेगल, मैक्समूलर के अनुसार धर्म व्यक्ति को अपूर्णता से पूर्णता की ओर प्रेरित करने वाली अनुभूति है। यह अनुभूति तभी सम्भव है जब व्यक्ति को अपनी वर्तमान अपूर्णता का बोध एवं पूर्णत्व के आदर्श का ज्ञान प्राप्त होता है। इसी से धार्मिक भावना एवं व्यवहार प्रकट होता है। इसलिए ज्ञान पक्ष धर्म में महत्वपूर्ण है।
2. वेदांत के अनुसार नित्य एवं अनित्य विवेक करने पर व्यक्ति आध्यात्मिक एवं पारमार्थिक लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। इसी विवेक के कारण अनित्य संसार से वैराग्य तथा नित्य के साक्षात्कार के लिए जिज्ञासा उत्पन्न होती है। इसलिए धर्म में ज्ञान तत्व महत्वपूर्ण है।

3. भाव एवं संकल्प की अपेक्षा ज्ञान उच्च है, क्योंकि इसी कारण मानव धार्मिक बनता है। पशु में विवेक के अभाव के कारण ही इसमें धार्मिकता का अभाव है। इसलिए धर्म के लिए बुद्धि आवश्यक है।
4. भावना एवं इच्छा चंचल, अस्थायी एवं अंधी होती है। इसलिए इस पर आधारित धर्म स्थायी व सार्वभौम नहीं बन सकती। अतः स्थायी एवं सार्वभौम धर्म के लिए बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है। इससे स्पष्ट है कि धर्म में ज्ञान का महत्व है।

धार्मिक चेतना भावना प्रधान है:

ह्यूम; केयर्ड, गैलवे, शिलयरमेकर, वायलर, मैक्टागार्ट और जेम्स आदि पाश्चात्य विचारकों ने धार्मिक चेतना में भावनात्मक तत्व को प्राथमिकता दी है। मैथ्यू आर्नाल्ड ने धर्म को रागात्मक नैतिकता कहा है। जेम्स, ईश्वरवादी धर्म, गैलवे, महात्मा गाँधी, शिलयरमेकर के अनुसार धर्म हृदय ग्राह्य होता है। यह पूर्ण निर्भरता की भावना है। ह्यूम, आदिमकालीन धर्म, मैक्टागार्ट ने धर्म को भय मिश्रित श्रद्धा माना है। इन धारणाओं के समर्थन में कुछ युक्तियाँ दी गई हैं—

1. कोई भी मनुष्य ज्ञान के स्तर पर उच्चता प्राप्त करने के कारण धार्मिक नहीं बनता। भय की भावना से ओत-प्रोत होने के कारण धर्म की ओर उन्मुख होता है। कोई भी व्यक्ति धार्मिक कार्यों में संलिप्त होने के कारण ही धार्मिक नहीं हो जाता है। धार्मिक भावना के कारण ही धार्मिक कृत्यों में संलिप्त होता है। इसलिए धर्म के प्रति भावना उत्पन्न होने के कारण ही व्यक्ति धार्मिक हो जाता है।
2. धर्म ईश्वर के प्रति स्नेह और भावना का प्रदर्शन है। इसलिए लाखों अज्ञानी और अशिक्षित व्यक्ति धार्मिकता का परिचय देते हैं। किन्तु अनेक शिक्षित एवं ज्ञानी व्यक्ति धर्म का खंडन करते हैं। इसलिए धर्म विश्वास अर्थात् भावना पर आधारित है, जिसका श्रोत स्नेह है।
3. धर्म का उद्देश्य साधक और ईश्वर के साथ तादात्म्य संबंध भावना से ही संभव है, क्योंकि ज्ञान द्वारा वस्तु और पार्थक्य की दीवार खड़ी हो जाती है। किन्तु भावना द्वारा इस विरोध का खण्डन हो जाता है। इसलिए धर्म भावना प्रधान है।
4. धर्म में विभिन्न क्रियाएँ की जाती हैं। किन्तु भावना के अभाव में ये क्रियाएँ यंत्रवत हैं। अतः धर्म में भावना जीवनदायनी है।
5. धर्म में मूर्ति-पूजा की परिपाटी है। बुद्धि कभी भी निर्जिव पर आत्मसमर्पण नहीं कर सकती। किन्तु भावना पत्थर को भी ईश्वर का प्रतीक समझती है। इसलिए धर्म भावना प्रधान है। प्रो. केयर्ड के अनुसार “सटिक चिंतन अथवा शुद्ध इच्छा के कारण हम धार्मिक नहीं बनते बल्कि ईश्वर के प्रति अपनी साधारण एवं मूलभूत भावना और प्रेम की विशेष दशा के कारण बनते हैं।”⁴

धर्म संकल्प या इच्छा प्रधान है:

वैदिक काल में कर्मकाण्ड पर जोर दिया गया है। यूरोपीय दर्शन में कांट, फिक्टे, आरनोल्ड, हॉफडिंग, हाइवेडे, शॉपरहावर इत्यादि दार्शनिकों ने संकल्प को धर्म का सर्वस्व कहा है। इन लोगों ने इस बात को सिद्ध करने के लिए निम्न तर्क दिए हैं—

1. धार्मिक उसे कहा जाता है जो धार्मिक क्रियाओं को सम्पादित करता है। इसलिए विश्व के सभी धर्म कर्मों और व्यवहारों पर जोर देता है। प्राचीन धर्म और प्राकृतिक धर्म में मानव में ज्ञान की कमी थी। फिर भी उनका धार्मिक जीवन व्यवहार तथा क्रिया में व्यक्त होता था। अतः धर्म का प्रधान क्रिया प्रतीत होता है।
2. धर्म मानव का ईश्वर के प्रति व्यवहार है। आदिकालीन युग में मानव शुभ-प्राप्ति के लिए संघर्ष करता था। मानव अपनी सीमा के विरुद्ध संघर्ष से ही धार्मिक बन पाता है। चूँकि संघर्ष एक क्रिया है। अतः धर्म का आधार क्रिया है।
3. धर्म में विकास के लिए क्रियाशीलता की आवश्यकता होती है। यह संकल्प द्वारा ही संभव है। फिर संसार के सभी महान व्यक्तियों का उपदेश कर्म करने के लिए प्रेरणा देता है। यह पूर्णतः नैतिक होता है। इसका आधार मानव कर्म होता है। अतः धर्म का आधार संकल्प है।

आलोचना

उपरोक्त मत के विरुद्ध अनेक तर्क दिए गये हैं तथा कहा गया है कि ये तीनों मत एकांगी हैं। इसका वर्णन इस प्रकार है—

1. ज्ञान पक्ष की आलोचना करते हुए विचारकों का कथन है कि यदि तर्क को धर्म समझ लिया जाए तो धार्मिक स्वरूप विकृत हो जाएगा, क्योंकि असंख्य अज्ञानी, अशिक्षित, मूढ़, श्रद्धालु और भावुक

व्यक्तियों को अधार्मिक मान लिया जाएगा। फिर ज्ञानी, विवेकी एवं बुद्धिमान ही अपेक्षाकृत अधिक कुतर्की, दंभी, नास्तिक और दुराग्रही होते हैं। दूसरी ओर लाखों अशिक्षित और अबौद्धिक व्यक्ति धर्म में अटूट आस्था रखते हैं। इसलिए कहा जाता है कि यदि धर्म को तर्क के हाथ में दे दिया जाय तो तर्क धर्म का परिष्कार करते-करते उसका परित्याग कर देता है। जी. ए. काक ने लिखा है कि यदि धर्म को केवल बौद्धिक वस्तु मान लिया जाय, जिसमें संवेगों और अनुभूतियों का सर्वथा अभाव हो तो वह धर्म न होकर दर्शन मात्र रह जाता है।

2. भावना पक्ष की आलोचना करते हुए विचारकों का कथन है कि यदि केवल भावना को ही धर्म का प्रमुख तत्व माना लिया जाए तो धर्म का आधार कमजोर और असंगत हो जाएगा। धर्म के विरुद्ध अनीश्वरवादियों के आक्षेपों का उत्तर देना कठिन हो जाएगा, क्योंकि बिना बुद्धि के आक्षेपों का प्रत्युत्तर नहीं दिया जा सकता है। फिर भावना पर आधारित धर्म अंधा, विवेकहीन और रूढ़िवादी हो जाता है। इसलिए प्रो. केयर्ड ने लिखा है कि भावना धर्म का सर्वस्व कहना व्याघातक है, क्योंकि भावना पर आधारित धर्म स्वयं भी इस भावना को धर्म के रूप में नहीं पहचान पायेगा।⁵
3. संकल्प पक्ष की आलोचना करते हुए विचारकों का कथन है कि यह धर्म के बाह्य स्वरूप को ही धर्म का एकमात्र रूप मानता है। जबकि धर्म का वास्तविक रूप आंतरिक और अलौकिक है। पुनः ज्ञान और विवेक के अभाव में धार्मिक क्रियाएं यंत्रवत एवं रूढ़िवादी हो जाती हैं। चूंकि मानव एक चेतन एवं विवेकशील प्राणी है, इसलिए चेतना विहीन उसका कोई भी कार्य अचेतन यंत्र के समान हो जाता है। कर्म, ज्ञान एवं भाव के अभाव में धर्म को सबल एवं स्थाई न बनाकर निर्बल एवं अस्थायी बना देता है।

धार्मिक चेतना का वास्तविक स्वरूप

उपरोक्त समीक्षा के बाद यह सिद्ध होता है कि तीनों मत एकांगी हैं। इनमें से किसी के द्वारा भी धर्म का सर्वांगीण स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। वस्तुतः धर्म का सर्वांगीण स्वरूप समन्वयात्मक है। इसलिए धार्मिक चेतना ज्ञान, भावना और क्रिया का सुंदर समन्वय है। यही समन्वय आध्यात्मिक एकता के रूप में परिलक्षित होता है। अतः यह प्रश्न उठाना कि ज्ञान, भावना और क्रिया में किसकी प्राथमिकता है, उचित प्रश्न नहीं है। प्रो. गैलवे इसी भाव को सम्पुष्ट करते हुए कहते हैं कि जब धार्मिक चेतना भावना प्रधान रूप से दिखलाई पड़ती है तो धर्म का स्वरूप संवेगात्मक प्रतीत होता है। जब यह ज्ञान प्रधान दिखलाई पड़ती है तो धर्म का स्वरूप बौद्धिक प्रतीत होता है। जब यह क्रिया प्रधान दिखलाई पड़ती है तो धर्म का स्वरूप व्यवहारिक प्रतीत होता है। इसी कारण आधुनिक वैज्ञानिक युग में धर्म में ज्ञानात्मक तत्व की प्रधानता दी जाती है, क्योंकि यह युग बुद्धि प्रधान युग है। मानवतावादी धर्म भावना प्रधान धर्म है। आदिकालीन व प्राकृतिक धर्म क्रिया प्रधान धर्म था। किन्तु ये विभिन्न प्रतीतियां केवल समय के अनुसार समन्वयात्मक धार्मिक चेतना के विभिन्न रूप हैं। इनका वास्तविक स्वरूप समन्वयात्मक है, जो ज्ञान, भावना और क्रिया का समुचित समन्वय है। वे तीनों तत्व धार्मिक चेतना में विशिष्ट रूप से अभिव्यक्त होते हैं। विश्वास और आस्था धार्मिक चेतना के ज्ञानात्मक एवं तार्किक पक्ष का प्रतिनिधित्व करती हैं। आत्मा, परमात्मा, जगत, मूल्य एवं आदर्श आदि के बौद्धिक विवेचन से धार्मिक के द्वारा अमूर्त बौद्धिक धारणाएं सरल एवं मूर्त रूप में ग्रहण होती हैं। इस प्रकार ज्ञान धार्मिक चेतना का महत्वपूर्ण अंग है। संकल्प धर्म में पूजा, प्रार्थना, संस्कार, योग आदि के द्वारा प्रगट होता है। इन क्रियाओं के अभाव में धार्मिक चेतना का अस्तित्व ही संभव नहीं हो सकता। धार्मिक चेतना विविध भावों से ओत-प्रोत रहती है। आशा, निराशा, योग, वियोग, प्रेम आदि अभिवृत्तियों के साथ ही में श्रद्धा आदि का भाव वर्तमान रहता है। अतः धार्मिक चेतना का स्वरूप ज्ञान, भाव तथा क्रिया का समन्वय है।⁶

धार्मिक चेतना के संबंध में रूडोल्फ ऑटो का मत

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक द आडिया ऑफ होली में रूडोल्फ ऑटो ने धार्मिक चेतना को नुमिनस के रूप में अभिहित किया है। इनके अनुसार नुमिनस असीम, अनंत एवं अवर्णनीय तत्व है, जिसकी अनुभूति रहस्यात्मक है। इसलिए यह अबौद्धिक रहस्यानुभूति है। यह अनुभवजन्य होने के कारण पूर्णतया पर है, क्योंकि यह असंसारिक या अलौकिक अनुभूति है। ऑटो का दिव्य तत्व नुमिनस भारतीय दर्शन में शंकर के निर्गुण परमतत्व ब्रह्म के समान है, क्योंकि दोनों जगह इसे असीम, अनंत, आनादि, अनिवर्चनीय, निर्गुण, निराकार और स्वानुभूतिगम्य माना गया है।⁷

आलोचना

डी. एम. एडवर्ड ने ऑटो के धार्मिक चेतना संबंधी मत का मूल्यांकन करते हुए कहा है कि यदि ऑटो का यह कथन मान लिया जाय कि नुमिनस विश्व से परे की सत्ता है जिसका बुद्धि से कोई संबंध नहीं है तो हमारे समक्ष एक जटिल समस्या उत्पन्न हो जाती है। धर्म में ईश्वर और मनुष्य के बीच आवश्यक संबंध होता है। पर नुमिनस को आराधना का विषय मानने पर यह मनुष्य की पहुंच से परे हो जाएगा। इसके फलस्वरूप धार्मिक कठिनाई उत्पन्न हो जाएगी। इस मत का समर्थन ई. ओ. जेम्स ने भी किया है।⁸

धार्मिक चेतना की विशेषताएँ

1. भारतीय चिंतकों के अनुसार धार्मिक चेतना स्वयं सिद्ध है। इसे किसी बाह्य प्रमाण द्वारा सिद्ध या स्थापित नहीं किया जा सकता।
2. धार्मिक चेतना प्रायः शिक्षा, वातावरण, परम्परा आदि के अनुसार विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न प्रकार से प्राप्त होती है। इसलिए इस चेतना का व्यक्तियों ने अनेक प्रकार से वर्णन किया है।
3. धार्मिक चेतना पूर्णरूपेण बुद्धिगम्य नहीं है। इसकारण इसमें अज्ञेयवादी रहस्यवादी तत्व वर्तमान रहता है।
4. इसमें वास्तविकता के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण निहित रहता है।
5. यह आत्मनिष्ठता एवं वस्तुनिष्ठता दोनों से मुक्त है। फिर भी इसके आत्मनिष्ठ पक्ष में विभिन्न वैयक्तिक भाव, विचार, इच्छा आदि मानसिक प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं तथा वस्तुनिष्ठ पक्ष में आध्यात्मिक सत्ता का बोध रहता है।
6. इसमें वैयक्तिक व समाजिक मूल्यों की सुरक्षा एवं अभिवृद्धि तथा आध्यात्मिक आदर्श की प्राप्ति के लिए इसमें पूजा, प्रार्थना, योग आदि का विधान होता है।⁹

इन विशेषताओं से स्पष्ट होता है कि धार्मिक चेतना तथा धार्मिक अनुभूति एक समान है। किन्तु यदि चेतना को केवल चेतन अनुभव के अर्थ में स्वीकार किया जाता है तो अनुभूति अधिक व्यापक मानी जायेगी। यदि चेतना को चेतन एवं अचेतन दोनों अनुभवों के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तो दोनों समानार्थक हो जाते हैं। धार्मिक अनुभूति में चेतन तथा अचेतन दोनों के अनुभव आते हैं। इसलिए इन दोनों में मौलिक भिन्नता देखने को मिलती है।

निष्कर्ष

इस तरह धार्मिक चेतना धर्म की पूर्णता है। इसमें ज्ञान, क्रिया और भावना नामक तीनों तत्वों का समन्वय है। यह सिर्फ आदर्शभाव नहीं, वरन् वर्तमान सत्य है। इसलिए यह केवल दार्शनिक जिज्ञासा का विषय नहीं, वरन् एक ऐसी वास्तविक अनुभूति है जिसमें व्यक्ति शांति एवं अभय प्राप्त करता है। इसलिए धार्मिक चेतना सूर्य में उपस्थित प्रकाश के समान है, जिसमें स्नान कर मानव आनंद व शांति का अहसास करता है।

संदर्भ:

1. वर्मा, वेद प्रकाश. *धर्म दर्शन की मूल समस्याएं*. दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, संस्करण 2001, पृष्ठ 203
2. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद. *धर्म-दर्शन की रूपरेखा*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, संस्करण 1997, पृष्ठ 20
3. ल्युबा, जे. एच. *द साइकोलॉजिकल ऑरिजिन एण्ड द नेचर ऑफ रिलिजन*, पृष्ठ 8
4. केयर्ड, जॉन. *द फिलॉस्फी ऑफ रिलिजन*. पृष्ठ 156
5. केयर्ड, जॉन. *एन इन्ट्रोडक्शन टु फिलॉस्फी ऑफ रिलिजन*. पृष्ठ 161
6. शर्मा, रामनाथ. *धर्म दर्शन*. मेरठ: केदार नाथ रामनाथ एण्ड कंपनी, संस्करण 1991, पृष्ठ 31
7. व्यास, रामनारायण. *धर्म-दर्शन*. भोपाल: मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, संस्करण 1999, पृष्ठ 59
8. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद. *धर्म-दर्शन की रूपरेखा*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, संस्करण 1997, पृष्ठ 27
9. वही, पृष्ठ 29